International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-04-2021, Accepted: 07-05-2021, Published: 24-05-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 37-40

हिंदी दलित आत्मकथाओं की भाषा

वंदना एस

शोधार्थी, हिंदी विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना, भारत

सारांश

साहित्य-सृजन का लक्ष्य मात्र किसी विषय के वर्णन तक सीमित नहीं है, अपितु उस विषय की पृष्ठभूमि में कार्यरत समाज-विशेष की पहचान से भी उसका संबंध है। हिंदी साहित्य की दुनिया में दलित साहित्य की चर्चा हमेशा होती रहती है। आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति होने के कारण इस साहित्य ने मानव-जीवन के निकटतम स्थान पाया है। इसमें भी दलित आत्मकथा ने अपनी अलग ही पहचान बनाई है। क्योंकि उन्होंने जो जीवन जिया है वह निस्संदेह भयावह है। उसमें चित्रित दरिद्रता, अपमान, शोषण – सब सच हैं। 'यह मेरी जिंदगी नहीं है, यह मुझ पर थोपी गई है' – का स्वर इन आत्मकथाओं में मुखरित होता है। इसके अलावा एक ओर ये बीते हुए भयावह कल को रखांकित करती हैं तो दूसरी ओर उनका शोषण करने वाली व्यवस्था पर सवाल उठाती हैं। इन प्रश्नों को भूलकर अगर हम इन आत्मकथाओं की साहित्यिकता, कलात्मकता, भाषा, रूप और शैली पर ही चर्चा करेंगे तो निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि इन आत्मकथाओं का उद्देश्य आपके लिए अनजान है। दलित आत्मकथाओं पर हमेशा आरोपों से वार किया गया। कभी अश्लीलता का तो कभी इनके अनुभवों पर झूठ का आरोप लगाया गया। दलित लेखकों से अक्सर यह सवाल पूछा गया कि युवावस्था में कोई कैसे आत्मकथा लिख सकता है**?** क्योंकि अनुभवी होने के लिए आदमी को कम से कम ५०-५५ साल पार करने पड़ते हैं। यहाँ लोग एक तथ्य भूल जाते हैं कि एक मध्यवर्गी और दलित के जीवन में ज़मीन-आसमान का अंतर होता है, अपनी छोटी उम्र में वह एक पूरी जिंदगी जी चुका होता है। जन्म लेते ही हज़ारों वर्षों का दुःख और दरिद्रता उसे प्राप्त होता है और उन अनुभवों को लिपिबद्ध करने हेतु पचासों - साठों साल रुकने की आवश्यकता नहीं होती है। जब वह लिखने बैठता है तो उन्ही तिक्त अनुभवों से फिर से उसे गुज़रना पड़ता है, बाद में उन अनुभवों को क्रमबद्ध करके अपना इतिहास वह प्रस्तुत करता है। आत्मकथाओं में असत्य घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होता। इन अनुभवों को लेखक शरण कुमार लिम्बाले 'रॉ मटेरियल' मानते हैं। इनके द्वारा ही आत्मकथा की सफलता का निर्धारण होता है। उसमे आए सभी अनुभव लेखक के विशेष अनुभव होते हैं क्योंकि सामान्य अनुभव तो हर कोई भूल जाता है, मगर जो विशेष होते हैं वे स्मृति पटल पर हमेशा छाए रहते हैं। दलित आत्मकथाएं बहु चर्चित होने का कारण भी यही है।

मूल शब्दः आत्मानुभूति, अश्लीलता, तिक्त अनुभव, मध्य वर्ग, नव-आंदोलन, अभ्यंतरीकरण

प्रस्तावना

"क्या भोगा है" से आत्मकथा की शुरुआत होती है। आत्मकथा से तात्पर्य केवल बीते हुए कल का लिपिबद्ध चित्रण मात्र नहीं है, केवल "जो सुना है, जो देखा है और जो कहा है" – से आत्मकथा जन्म नहीं लेती। जो डरावनी जिंदगी जी है वह हमेशा यादों में पीछा करती रहती है, और यह आत्मकथा उसका भी वर्णन है। किसी भी विशेष समाज के अध्ययन के लिए उस समाज द्वारा लिखित साहित्य का अध्ययन आवश्यक है चाहे उस समाज से संबंधित अन्य समाज द्वारा लिखित रचनाएँ कितनी भी हों। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित समाज की पहचान सही मायने में तभी हुई जब दलित लेखकों द्वारा अपना साहित्य रचा जाने लगा। उनका दुःख-दर्द, कठिनाइयाँ, शोषण – ये सब बाहरी

दुनिया के लिए अनजान था। अगर दलित साहित्य न आया होता तो इस दर्दनाक सच का अनुभव शायद ही कोई कर पाता। कई विद्वानों द्वारा स्थापित मत है कि किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का चित्र तदयुगीन साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। साहित्यिक दृष्टि से हिंदी साहित्य का आधुनिक काल विभिन्न प्रयोगों का युग रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप बहु विध गद्य रचना प्रणालियों का जन्म हुआ। इन गद्य विधाओं में स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में आत्मकथा की गिनती की जाती है, जिसमें लेखक अपने जीवन, परिवेश, महत्वपूर्ण घटनाओं, विचारधारा तथा अपने समय की सामाजिक – राजनीतिक स्थितियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। यह सर्वमान्य बात है कि अपने विषय में बहुत कुछ बताने की इच्छा मानव मन में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। अपने जीवन में कटु अनुभवों के अलावा और कुछ भी न हो, विभिन्न सामाजिक तत्वों द्वारा शोषण ही हो रहा हो, उनसे जूझने के लिए साहित्य के अलावा सशक्त माध्यम दूसरा कोई नहीं हो सकता। हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा की उपज इस प्रकार होती है। आत्मकथा के अतिरिक्त कोई ऐसी विधा नहीं है जो प्रत्येक रूप से मानव के व्यक्तित्व का उदघाटन करने में समर्थ हो। इस दृष्टि से साहित्य की अन्य सभी विधाओं में सबसे अनुकूल एवं सहज विधा आत्मकथा ही प्रतीत होती है।

आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक के साहित्य का विश्लेषण अगर हम करें तो यह तथ्य सामने आता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर उस दौर में जितना भी साहित्य रचा गया मुख्यतः किसी विशेष वर्ग के लोगों के लिए समर्पित था। कभी उसका नायक राजा था तो कभी युद्ध का वर्णन किया गया, कभी मनोरंजन के लिए था तो कभी स्त्री के शारीरिक सौन्दर्य को महत्व दिया गया। समाज में एक वर्ग हमेशा पीड़ित-तथा शोषित होने के लिए बाध्य था, जिसे दलित कहा गया। धीरे – धीरे उन्होंने पाया कि जिस समाज में वे जी रहे हैं, वहां जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसमें उनके लिए कोई स्थान नहीं है। मुख्यधारा साहित्य जिसे कहा जाता है उसमे उनका कभी जिक्र हुआ ही नहीं। शिक्षा तो उसके लिए एक सपना था तथा साहित्य तो बहुत दूर की बात। निरंतर संघर्ष के उपरांत वह पढ़-लिखकर अपने बारे में सोचने तथा समाज के समक्ष खड़ा होना सीखने लगा। जब उनके गले से अपना दुःख गान बहने लगा तो किसी को झटका लगा तो किसी के मन में सहानुभूति पैदा हुई और एक वर्ग ऐसा भी बना जो इसे अश्लील साहित्य की कोटि में डाल दिया। बाहर से अगर हम देखेंगे तो लगेगा कि इसका सरोकार सिर्फ दलित समाज से है। मगर यह एक वर्ग-विशेष के साथ पूरे समाज का भी चित्र प्रस्तुत करता है, यह मानव-मुक्ति का साहित्य है।

अध्ययन क्षेत्र

प्राचीन हिंदी साहित्यकारों में आत्मकथा लेखन की प्रवृत्ति कहीं न कहीं दिखाई देती है, पर गौण रूप से। चूंकि पारलौकिकता के आगे उन्हें इस दृश्यमान जगत की महत्ता नहीं दिखाई दी। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने जीवन पर प्रकाश डालना उन्हें आवश्यक नहीं लगा। और एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन कवियों का मन गद्य विधाओं से अधिक पद्य विधा में रमता था। मगर भक्तिकाल तक आते – आते कुछ कवियों के जीवन से संबंधित विवरण हमें उनकी रचनाओं से प्राप्त होने लगते हैं। सन १६४१ में बनारसी दस चतुर्वेदी द्वारा अपनी आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' लिखी जाती है, जिसे कई आलोचकों ने हिंदी की पहली आत्मकथा मानी है। इसमें कवि ने 55 वर्षों के अपने जीवन चरित को प्रस्तुत किया है। किंतु आधुनिक काल में आकर स्थिति काफी बदल जाती है। आगे जाकर भारतेंदु युग में इस विधा की नींव बनती है। भारतेंदु युग का प्रत्येक रचनाकार जीवन की खुली अभिव्यक्ति पर विश्वास रखता था। इसीलिए इस युग को एक प्रकार से आत्मकथा लेखन का उद्भवकाल भी कह सकते हैं। अपने बारे में कहने की प्रवृत्ति मानव समाज में स्वाभाविक है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति को खुद से अधिक दूसरा कभी नहीं जान-समझ सकता है। जब वह अपने बारे में बखान करता है तो उसमें सत्यता का होना स्वाभाविक है। इसीलिए आत्मकथा लेखन की प्रक्रिया का जटिल होना भी स्वाभाविक है। दूसरों का विश्लेषण, उनकी आलोचना तो हर कोई कर लेता है। लेकिन जब खुद की बारी आती है तो झिझक महसूस करना पड़ता है।

१९९० के दशक के बाद हिंदी साहित्य जगत में एक नव-आंदोलन की तरह आत्मकथाएं उभरने लगती हैं। निश्चित रूप से एक सवाल किसी के भी मन में पैदा हो सकता है कि जब हिंदी साहित्य में पहले से आत्मकथा-लेखन की प्रक्रिया जारी थी तो अलग से दलित आत्मकथा लेखन की ज़रूरत क्यूँ आई? जैसे कि पहले ही कहा गया है, साहित्य में जो कुछ भी लिखा जा रहा था, उसमें एक विशेष वर्ग के जीवन का ही चित्र मौजूद था। इतिहास तथा साहित्य से वंचित इन लेखकों ने संघर्ष स्वरूप अपने जीवनानुभवों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया, जो आज सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। यह सर्व ज्ञात बात है कि दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत बाबा साहेब आंबेडकर हैं। यद्यपि उन्होंने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, फिर भी दलित आत्मकथाकारों ने निश्चित रूप से उन्ही से प्रेरणा ली होगी। दलित आत्मकथाएं सर्वप्रथम मराठी में लिखी गईं। हिंदी में इसकी शुरुआत मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' से होती है। इसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित आत्मकथा 'जूठन' आती है। फिर तो आत्मकथाओं का दौर-सा चल पड़ता है। आज हिंदी में अनेक आत्मकथाएं आ चुकी हैं, जिनमें प्रमुख हैं –

1. अपने अपने पिंजरे- मोहनदास नैमिशराय
2. जूठन – ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. तिरस्कृत – सूरजपाल चौहान
4. झोपड़ी से राजभवन – माता प्रसाद
5. चमार की – श्यौराज सिंह 'बेचैन'
6. मेरा सफ़र मेरी मंजिल – डी.आर.जाटव
7. मेरी जात – जयप्रकाश कर्दम
8. दोहरा अभिशाप - कौशल्या बैसंत्री
9. जब मुझे चोर कहा – एन.आर.सागर
10. तिरस्कार – के. नाथ
11. घुटन – डॉ. रमाशंकर आर्य
12. मुर्दहिया- डॉ. तुलसीराम ।

साहित्य में नूतनता का संक्रमण भाषा, कथ्य एवं रूप के विभिन्न स्तरों पर उदघाटित होता है। सामान्यतः भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम कही जाती है। साथ ही भाषा विचारों के आभ्यंतरीकरण का एकमात्र माध्यम है। असल में भाषा हमारे अभ्यंतर के निर्माण, विकास, अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और अपने इतिहास तथा परंपरा से विछिन्न है। इसलिए जीवन के काल और थल को रेखांकित करने वाले साहित्य की भाषा का विवेचन-विश्लेषण मानव जीवन के अनदेखे –अनजाने इलाकों की तरफ प्रकाश डालेगा। दूसरे शब्दों में भाषा का विस्तार जीवन का ही विस्तार है, भाषा का अध्ययन जीवन का ही अध्ययन बन जाता है। स्वाभाविक है कि हर विधा की भाषा की अपनी-अपनी खासियतें होती हैं। लेकिन दलित आत्मकथाकारों की रचनाओं में आक्रोश, दर्द के साथ ही एक व्यापक जनसमुदाय का भावात्मक इतिहास प्रस्तुत होता है। जिन लोगों ने जीवन में हर पल पीड़ा, शोषण,अपमान तथा दमन का अनुभव किया उसका जीवंत उदाहरण है ये आत्मकथाएं। इनकी भाषा पर अश्लीलता का आरोप क्यूँ लगाया गया? अश्लील उसे कहा जाता है जो हमें अश्लीलता के बारे में सोचने के लिए मजबूर करे। क्या ये आत्मकथाएं पाठकों के मन में ऐसी छाप छोड़ती हैं? इस साहित्य में सब कुछ यथार्थ है और यथार्थ में इस बात का शर्त नहीं लगा सकते कि सब कुछ सुन्दर ही हों। जिसके पास सारी सुख-सुविधा का साधन हो उसकी ज़िन्दगी का हर पल सुन्दर होता ही है। सुन्दरता की कसौटी क्या होनी चाहिए – इस पर पाठक को सोच-विचार करना होगा। दलित आत्मकथा की भाषा पर सवाल उठाने का कारण यही है कि उसमे गालियों का प्रयोग हुआ है। गालियाँ तो हमेशा उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा रही हैं। जब एक बच्चा पैदा होता है तब से वह उच्च कुल के लोगों द्वारा गाली सुनता है। इन्हें सुनते-सुनते वह अपना नाम तक भूल बैठता है। लेखक मोहनदास नैमिशराय कहते हैं -"गालियाँ अपनी आत्मकथा से निकालूं या भारतीय समाज से, जिसकी नस-नस में वे बसी हैं और दलित समाज की माँ-बहन-बेटियों ने जिन्हें सुनते – सुनते उत्पीडन सहा है, भोगा है। क्या यथार्थ का वैसा चित्रण नहीं करना चाहिए, जिसे हजारों वर्षों से दलित समाज के लोग भोगते हैं, जिसे हिन्दू शंकराचार्यों ने 'व्यवस्था' का नाम दिया। वही गालियां किताबों में समीक्षकों को क्यूँ खटकती हैं, जो समाज में कही-सुनी जाती हैं और बुरी-अश्लील नहीं लगती।"1 तिक्त अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए

आत्मकथाओं के अलावा दूसरी कौन-सी विधा उचित हो सकती है? जिन्होंने इस भाषा पर आरोप लगाया है, उन्हें लगता है कि अनुभव चाहे जैसा भी हो भाषा पवित्र होनी चाहिए चाहे वह बनावटी ही क्यों न हो। दलित साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति होती है, वह कल्पना पर आधारित साहित्य बिलकुल नहीं है। " वे जिस परिवेश में जीवन जीते हैं, वहाँ गन्दी गलियों में नंग-धडंग घूमते बच्चे हैं, दूषित वातावरण है, जिसे पारंपरिक आलोचक नहीं जानते, उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा।"2 इनके साथ-साथ कई स्थानीय शब्दों का भी प्रयोग इनमे हुआ है जो पाठक को उनके जीवन के और करीब ले जाते हैं। दलित साहित्य की भाषा पर गाली-गलौज के आरोप का उत्तर देते हुए आलोचक कंवल भारती कहते हैं - "यह बताओ/बलात्कार की शिकार/तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी?/कैसे होंगे/गुलामी की जिंदगी जीने वाले/तुम्हारे बाप के विचार?/ठाकुर की हवेली में दम तोडती/तुम्हारी बहिन के शब्द?/क्या वे सुन्दर होंगे?"3 इन पंक्तियों के बाद उस आरोप के बदले में कहने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता। ध्यान देने की बात सिर्फ यह है कि भाषा सुन्दर तभी होगी जब आपका पेट भरा हो, आप आज़ाद हो और आपका जीवन भी सुन्दर हो।

निष्कर्ष

दलित आत्मकथाओं के पाठक अक्सर मध्यवर्ग ही होते हैं। मगर दुखद बात यह है कि जिनके लिए ये आत्मकथाएं लिखी जा रही हैं वे आज भी अशिक्षित हैं। सदियों से उन्हें शिक्षा से वंचित रखा गया तो वे पढेंगे कैसे? और सोच-विचार करने पर यह महसूस होता है कि मध्यवर्ग को ही इन्हें पढना चाहिए। क्योंकि जब तक वे पढेंगे नहीं तब तक समस्या को समझेंगे नहीं और जब तक समझेंगे नहीं तब तक पास आएँगे नहीं। दलितों के दुःख-दर्द को समझकर उनके साथ कंधे से कन्धा मिलाकर मध्यवर्ग जब खड़ा होगा तभी यह समाज उन्नति की ओर अग्रसर होगा। इसी कारण लेखक शरण कुमार लिम्बाले दलित साहित्य को 'प्रबोधन (सुधार) के माध्यम' के रूप में देखते हैं। लोगों में यह भ्रम हो सकता है कि आत्मकथा लेखन एक सरल प्रक्रिया है। किन्तु इसके पीछे छुपे खतरे कम नहीं हैं। अपने जीवन का खुलासा करने के साथ-साथ कई दुश्मनों को भी लेखक कमा लेता है जिसमे खुद अपना परिवार भी शामिल होता है। कैसी विडम्बनापूर्ण स्थिति है यह! एक और भ्रम यह है कि दलित होने के नाते सारे लेखकों का जीवन सामान ही होगा। नहीं। हर एक का जीवन दूसरे से भिन्न होने के कारण ही इन आत्मकथाओं को इतनी लोकप्रियता मिली। इसी कारण उन्हें प्रकाशक मिले, पाठक मिले। 'मेरा जीवन इससे कुछ अलग है'- से ही आत्मकथा लेखन की शुरुआत होती है। दलित कविता, उपन्यास, समीक्षा आदि के कारण दलित साहित्य का विकास हुआ, किन्तु इन आत्मकथाओं ने उसे समृद्ध बनाया, लोकप्रिय बनाया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नैमिशराय मोहनदास, 1996, हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा लिखने के संकट, हंस प्रकाशन, दिल्ली
2. वाल्मीकि ओमप्रकाश, 2014, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. भारती कंवल, 2006, दलित निर्वाचित कविताएं,इतिहासबोध प्रकाशन,दिल्ली.